अक्तूबर १९९२ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति, तं भूमि रामणेय्यकं॥

गांव में या अरण्य में, नीचे या ऊंचे, जहां अरहन्त विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय है।

– धम्मपद ७-९.

कैसे सज्जन लोग!
बर्मा का भिक्षु संघ

साधक भिक्षु
वैवू सयाडो

परम पूज्य ऊ बा खिन के और विपश्यना के सम्पर्क में आने के बाद अन्य अनेक मूर्धन्य भिक्षुओं से निकटका संपर्क हुआ। जैसे मांडले के मसोजैं सयाडो, रंगून के छाउठाजी सयाडो, बाहान के कांऊसयाडो। उन सब के संत स्वभाव से बहुत प्रभावित हुआ। पर जिन साधक भिक्षु ने हृदय को गहराइयों तक छू लिया वह थे महास्थविर वैवू [विपुल] सयाडो जो कि गंभीर साधना द्वारा अर्हन्त अवस्था को प्राप्त कर चुके थे। उनके सौम्य चेहरे की शांति और कांति, उनकी हृदयग्राही मंदमुस्कान, उनके समीप का शीतल सुखद वातावरण हर किसी के लिए अत्यंत आकर्षक था। विपश्यी साधक का तो कहना ही क्या?

गुरुदेव ऊ बा खिन का वैवू सयाडो से बहुत घनिष्ट संबंध था। ऐसी एक मान्यता है कि अनागामी अवस्था तक पहुँचे हुए वैवू सयाडो जब पहली बार रंगून में गुरुजी के ध्यान केन्द्र में एक सप्ताह के लिए आये तो वहीं साधना करते हुए उन्हें अर्हंत अवस्था का मार्ग-फल प्राप्त हुआ और वे भवचक्र से नितांत विमुक्त हुए।

सयाजी का वैवू सयाडो से प्रथम संपर्क बहुत चमत्कारिक ढंग से हुआ। युद्ध-पूर्व की घटना है। सन् १९४१ के आरंभ में गुरुजी बर्मा रेल्वे के चीफ अकाउंट अफसर थे और उत्तर बर्मा के विभिन्न रेल्वे स्टेशनों पर अकाउंट ऑडिट करने का उत्तरदायित्त्व निभाते थे। रेल्वे ने उन्हें एक स्पेशल डब्बा दे रखा था जिसमें निवास और भोजन के साथ-साथ कार्यालय की भी पूरी सुविधा थी। यह डिब्बा उनकी यात्रा के लिए किसी प्रमुख गाड़ी में जोड़ दिया जाता था और जिस स्टेशन पर उनको अकाउंट की चेकिंग करनी होती वहां काट दिया जाता था। चेकिंग का काम पूरा कर लेने के बाद आगे की यात्रा के लिए अगली किसी गाड़ी से फिर जोड़ दिया जाता था।

एक बार ऐसा हुआ कि उनका यह डब्बा गलती से मांडले नगर से ४० मील दूर चौसे नामक किसी छोटी स्टेशन पर काट दिया गया और गाड़ी आगे चल दी। उस छोटी स्टेशन पर अकाउंट चेक करने का कोई प्रोग्राम नहीं था। फिर भी वहां रुकना पड़ा तो थोड़ी सी देर में अकाउंट चेक करने का काम पूरा कर लिया। अगली गाड़ी शाम को मिलेगी। दोपहर भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम भी कर लिया। अब क्या करें? इतनी देर डब्बे में ही कैसे रहते? वे स्टेशन मास्टर को लेकर गांव की ओर चल दिए।

देखा नीचे दूर तलहटी की ओर वन प्रदेश है जिसमें एक कुटिया है। पूछा –'यहां कौन रहता है?

जवाब मिला – 'वैवू सयाडो नामक कोई भिक्षु ध्यान करते हैं।'

–'चलो, मिलेंगे उनसे।'

–'पर गुरुजी वे इस समय किसीसे मुलाकात नहीं करते।

–'फिर भी चलो देखें।'

और दोनों पगडंडी पर चलते हुए बांसपट्टी की बनी हुई उस छोटी सी कुटिया के समीप जा पहुँचे। वहां कोई एक वृद्ध महिला मिली, जिसने कहा कि कुटिया का दरवाजा शाम के ६ बजे कुछ देर के लिए खुलता है, इसके पहले नहीं।

गुरुजी ने कहा –'हम केवल बाहर से ही नमस्कार करके चले जाएंगें। उन्हें कष्ट नहीं देंगे।'

अब तो दिन के तीन ही बजे हैं। उतने समय तक गुरुजी रुक नहीं सकते थे। उन्होंने उस कुटिया के सामने बैठकर विपश्यना की। अनित्य बोध की चेतना के साथ तीन बार सिर झुकाकर नमस्कार किया और बहुत धीमे स्वर में कहा –'मैं आपके आशीर्वचन लेने रंगून से आया हूं।' तत्काल कुटिया का दरवाजा खुल गया। भिनभिनाते मच्छरों के एक झुंड के साथ भिक्षु दरवाजे के बाहर आये, पूछा –'कौन हो?

– गुरुजी ने अपना परिचय दिया।

– 'क्या चाहिये?'

– 'निर्वाण।'

– 'निर्वाण कैसे प्राप्त होगा?

– 'विपश्यना करने से भन्ते!

– 'विपश्यना करते हो?

– 'हां भन्ते!

– 'कहां सीखी?

– 'गृहस्थ संत सयातैजी के पास।

– 'कितने वर्ष अरण्य में तपे हो?

– 'अरण्य में तो कभी नहीं गया भन्ते! घर में ही अभ्यास करता रहा।'

– 'कैसे अभ्यास करते हो?

गुरुजी ने जैसी साधना करते थे उसका विवरण दिया।

सयाडो ने कुछ देर गुरुजी के साथ साधना की और आश्चर्यचकित होकर कहा –"हम वर्षों अरण्यों में रहकर जिसे पाते हैं, तुमने घर में रहते हुए उसे इतनी सरलता से प्राप्त कर लिया। बड़े पुण्यशाली हो! बड़े पारमीवाले हो! तुम्हारे पास इतनी बड़ी विद्या है, लोगों को इसकी जरूरत है, तुरंत सिखाना शुरू कर दो। जो पुण्यशाली तुम्हारे संपर्क में आएं, वे इससे वंचित न रह जांय।"

– "घर लौटकर कोशिश करूंगा भन्ते!"

–"घर लौटकर नहीं। आज, अभी सिखाना शुरू कर दो। जिस किसी का भी लाभ हो जाय।"

गुरुदेव स्टेशन मास्टर के साथ गांव लौट आये। स्टेशन पर पहुँचते ही अपने डब्बे में गये। स्टेशन मास्टर के आग्रह से उन्होंने उसे वहीं आनापान की शिक्षा दी। यह गुरुदेव का प्रथम धर्म प्रशिक्षण था और यह भाग्यशाली व्यक्ति उनका प्रथम धर्म-शिष्य।

यद्यपि औपचारिक रूप से विपश्यना सिखाने का कार्य गुरुदेव ने कुछ वर्षों बाद आरंभ किया, परन्तु उन सन्त भिक्षु की प्रभूत प्रेरणा द्वारा प्रथम प्रशिक्षण का यह सफल प्रयोग उनकी जीवनयात्रा की महत्त्वपूर्ण मोड़ का एक पावन प्रसंग बना।

***

सन् १९४१ के बाद वर्षों तक पूज्य गुरुदेव का वैबू सयाडो से व्यक्तिगत संपर्क नहीं हुआ। इस बीच दूसरा महायुद्ध छिड़ा। ब्रह्मदेश पर जापानियों का क्रूर आधिपत्य हुआ। फिर मित्र राष्ट्रों के हमले से, विशेषकर हिरोशिमा और नागासाकी में अणुबम के हमले से जापानी सेना ने हथियार डाल दिए। बर्मा पर भी उनका आधिपत्य समाप्त हुआ। ब्रिटिश सरकार आयी। पर तब तक देश ने आजादी और गुलामी का अन्तर खूब देख-समझ लिया था। देश में आजादी की चेतना तीव्र रूप से जागी हुई थी। भारत की राजनैतिक जागृति का भी यहां विपुल प्रभाव पड़ा और फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार को भारत के साथ-साथ बर्मा को भी आजाद करना पड़ा।

गुरुदेव बर्मा की आजादी को बहुत महत्त्व देते थे। हर वर्ष ४ जनवरी को आजादी दिवस पर वे केन्द्र पर ध्यान का विशेष आयोजन करते थे। उनकी मान्यता थी कि विदेशी राज्य के कारण बुद्ध शासन के प्रसारण में अनेक बाधाएं थीं। और अब केवल ये बाधाएं ही दूर नहीं हुईं, बल्कि हर प्रकार की अन्य सुविधाएं भी उपलब्ध हो गईं। अतः बागियों के कारण देश की आजादी फिर खतरे में पड़ी तो गुरुदेव चिंतित हुए। पर क्या करते? उनके पास तो केवल धर्म का ही बल था। अपने मैत्रीबल का प्रचुर प्रयोग करते थे।

उन्होंने सोचा कि ऐसे संकट के समय कोई एक उच्चकोटि का संत भी रंगून आकर उनके साथ मैत्री में सहयोग दे तो बड़ा अच्छा हो। उनका ध्यान भिक्षु वैबू सयाडो की ओर गया। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि यदि वह भी रंगून पधारकर उनके साथ मैत्री बल का प्रयोग करें तो बड़ा प्रभावी होगा। परन्तु वैबू सयाडो तो अपना स्थान छोड़कर कहीं बाहर जाते नहीं और फिर यह वर्षावास के चातुर्मास का समय, भिक्षु अपना स्थान छोड़कर कैसे यात्रा करेंगे! यद्यपि आपात्काल हो तो वर्षावास में भी एक सप्ताह की यात्रा कर सकने की छूट है। परन्तु क्या वैबू सयाडो मानेंगे? गुरुदेव को पूर्ण विश्वास था कि वे अवश्य मानेंगे। यद्यपि १९४१ में सिर्फ एक बार थोड़ी सी देर के लिए उनसे मिले थे, जब कि उन्होंने अपनी दैनिक दिनचर्या का नियम तोड़कर अपनी कुटिया के दरवाजे असमय खोल दिए थे। इसके बाद वे उनसे कभी नहीं मिल पाए। न गुरुदेव उत्तर बर्मा गए और न ही सयाडो अपना स्थान छोड़कर दक्षिण आए।

गुरुदेव का एक प्रमुख शिष्य बर्मी सरकार का उच्च अधिकारी ऊ बुं शैं गुरुजी के प्रतिनिधि के रूप में उत्तरी बर्मा में भिक्षु प्रवर को व्यक्तिगत रूप से आमंत्रित करने गया। जब पुरानी राजधानी मांडले पहुँचा तो लोगों ने उसे आगे जाने से रोकना चाहा, क्योंकि यह जग जाहिर था कि हजार दबाव के बावजूद भिक्षु वैबू अपना विहार छोड़कर मांडले तक कभी नहीं आए, रंगून की यात्रा तो सर्वथा असंभव है और वह भी इन वर्षावास के दिनों में।

परन्तु संतों का पारस्परिक संबंध बड़ा अद्भुत होता है। गुरुदेव का आमंत्रण पाते ही वैबू सयाडो अत्यंत प्रसन्नता से उसी टैक्सी में बैठकर मांडले चले आए, जिसमें ऊ बुं शैं उन्हें लेने गया था। और मांडले से वायुयान द्वारा तुरंत रंगून चले आए। गुरुदेव से मिलकर वे बहुत आह्लादित हुए। वे छह दिन गुरुदेव के आश्रम में रहे। उनकी मैत्री बड़ी प्रभावशाली थी। देश का तो कल्याण हुआ ही। पर बहुत बड़ा कल्याण आश्रम का हुआ और स्वयं उनका भी। धन्य है ऐसे संतों का समागम!

***

इस घटना के बाद बार-बार वैबू सयाडो रंगून आते रहे और अधिकतर पूज्य गुरुदेव के आश्रम में ही टिकते रहे। जब-जब आश्रम में टिकते रोज थोड़ी देर धर्मचर्चा करते, धर्म-प्रवचन देते। एक बार अपनी धर्मचर्चा में उन्होंने कहा कि जब मैं पहली बार यहां आया तो यह स्थान उजाड़ जैसा था। लेकिन चंद दिनों में ही कितना बदल गया! यह स्थान भगवान बुद्ध के समय के स्थानों से कितना मिलता है! तब भी कितने प्राणी लाभान्वित हुए थे! अब भी कितने हो रहे हैं! कोई गिनकर बता सकता है? अनगिनित हैं, अनगिनित।

***

बर्मी परंपरानुसार हर पुरुष जीवन में एक बार भिक्षु अवश्य बनता है, भले थोड़े से दिनों के लिए ही बने। इसे निभाने के लिए और एकांत ध्यान की सुविधा के लिए गुरुदेव ऊ बा खिन एक बार दस दिनों के लिए वैबू सयाडो के विहार में प्रवर्जित होकर रहे। बिना अन्य किसी को बताए वह अपने एक विशिष्ट शिष्य ऊ को ले [मांडले विश्वविद्यालय के अवकाशप्राप्त उपकुलपति] के साथ चीवर धारण कर वैबू सयाडो के यहां एकांत ध्यान करते रहे।

***

पूज्य गुरुदेव के शरीर त्यागने पर जब एक बार वैबू सयाडो रंगून पधारे तो भारत से गए हुए लगभग २५ विदेशी साधक रंगून के आश्रम में उनसे मिले। जब पूज्य गुरुदेव के निधन की बात चली तो उन्होंने कहा, "तुम्हारे सयाजी मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए हैं। सयाजी जैसे व्यक्ति कभी मरते नहीं। भले अब तुम उन्हें सशरीर न देख सको। परन्तु उनकी शिक्षा कायम रहेगी। वह ऐसे व्यक्तियों में नहीं थे जो जिंदा भी मुर्दे जैसा निरर्थक जीवन जीते हैं; जिनसे किसी का कोई भला नहीं होता।"

***

मैंने पूज्य गुरुदेव से १९५५ में विपश्यना सीखी। अतः पूज्य वैबू सयाडो जब पहली बार आश्रम आए तो मैं उनसे नहीं मिल सका। उसके बाद वे जब-जब आश्रम आए तब-तब उनके दर्शन हुए, उनसे वार्तालाप का सौभाग्य मिला। उनका पूज्य गुरुदेव से तो गहरा संबंध था ही, निश्चय ही उनकी मुझ पर भी विशेष अनुकम्पा रही।

रंगून के आश्रम में उनके दर्शन करने, प्रवचन सुनने और उन्हें समोद अभिवादन करने के तो अनेक अवसर मिले ही, एक

बार पूज्य गुरुदेव तथा उनके अन्य शिष्यों के साथ उत्तरी बर्मा की धर्मयात्रा करते समय वैबू सयाडो के विहार में भी जाकर उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जब हम विहार में पहुँचे तो वे अपना भोजन कर चुके थे और मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि आदरणीय भिक्षु प्रवर विहार के भीतर एक छोटी सी वीथिका के किनारे सार्वजनीन पानी के नल के पास बैठे हैं और अपना भिक्षापात्र, जिसमें अभी-अभी भोजन किया था, स्वयं धो रहे हैं। उस समय विहार में उनके सैकड़ों शिष्य ठहरे हुए थे। उनमें से कोई भी यह सेवा कर अपना अहोभाग्य मानता। परन्तु वे अपनी निजी सेवा किसी से नहीं करवाते थे। अपने निवास स्थान पर झाड़ू लगाना, कमरे की सफाई करना, चीवर की धुलाई करना आदि सारे काम स्वयं अपने हाथों करते थे। धन्य उनकी विनम्रता! धन्य उनकी सादगी! धन्य उनकी सात्त्विकता! धन्य उनका स्वावलंबन!

जिस संत के दर्शन करने के लिए और उन्हें पंचांग प्रणाम कर पाने के लिए, देश भर में जहां जाएं, वहीं हजारों भक्तों की भीड़ उमड़ पड़े, वही भिक्षु प्रवर गली के किनारे एक शिला के टुकड़े पर बैठे हुए अपना जूठा पात्र स्वयं धो रहे हैं और मुस्करा रहे हैं। सचमुच धन्यता धन्य हुई!

भिक्षु अपने बर्तन धोकर, तौलिए से हाथ पोंछकर मुस्कराते हुए उठे और हमें अपने निवासकक्ष में ले गए। बाद में किसी से पता चला कि उनके निवासस्थान में उनके सिवाय अन्य किसी का भी प्रवेश वर्जित है। हम वहां कई देर तक बैठे रहे। उस कक्ष की धर्मतरंगों से लंबी यात्रा की थकान बैठते ही दूर हो गयी। जी चाहता था कि वहीं बैठे रहें और उनके मुखारविंद से निकले धर्म के बोल सुनते रहें। उनके करुणापूर्ण चेहरे की अद्भुत शांति और कांति, उनकी सतत विद्यमान हृदयग्राही मुस्कान और उनके आसपास धर्म की तरंगों से तरंगित प्रशांत वातावरण किसी को भी आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था। एक विपश्यी साधक का तो कहना ही क्या!

बर्मा के जिन-जिन पंडित, मेधावी और साधक संत भिक्षुओं के प्रति मेरे मन में असीम श्रद्धा का भाव जागा, उनमें परम श्रद्धेय संत अर्हन्त वैबू सयाडो सर्वशिरोमणि थे। उन्हें देखकर मन को बड़ा आश्वासन मिलता था कि विपश्यना की इस विधि द्वारा जीवनमुक्त अर्हंत अवस्था प्राप्त की जा सकती है।

मुझ पर उनकी विशेष कृपा रही। बर्मा छोड़ने के बाद वर्षों तक वहां वापस न लौट सका। इस बीच उनका परिनिर्वाण हो गया। इसके कुछ समय पूर्व श्रीलंका का मेरा एक साधक शिष्य बर्मा गया और उसने उनके आश्रम में उनसे साधना सीखी। जब लौटने लगा तो भिक्षु प्रवर ने उसके हाथों मेरे लिए एक अनमोल भेंट भेजी, जो उनके मंगलमय आशिर्वादों से भरी थी। मैं धन्य हुआ!

मंगल मित्र,

स. ना. गो.